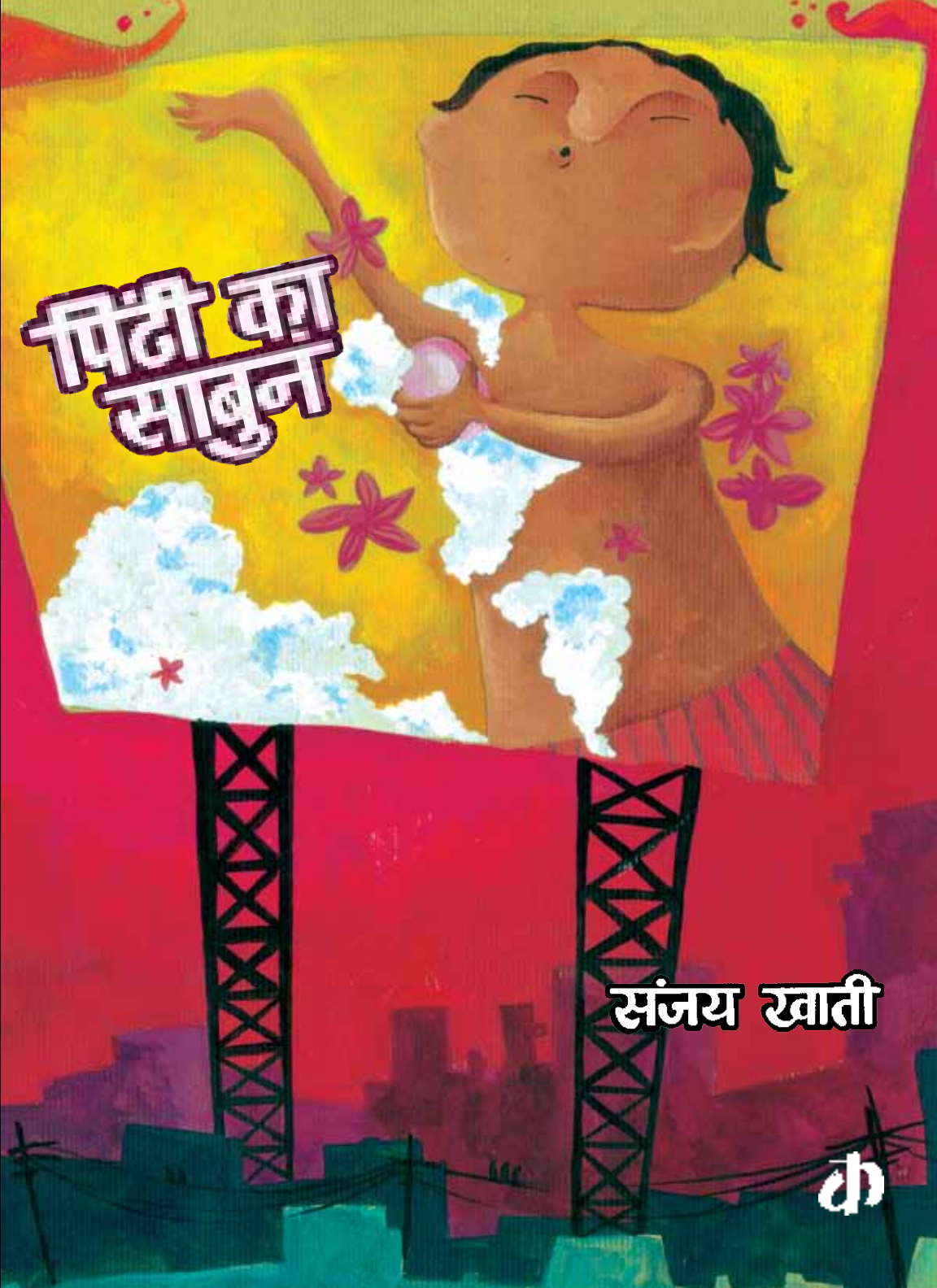
पिंटी का साबुन
संजय खाती

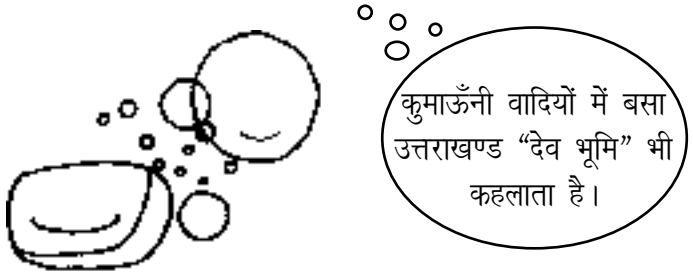

लेखक के बारे में

एक पत्रकार, **संजय खाती** नई दिल्ली में रहते हैं। उनके लेखों और कृतियों में उपभोक्तावाद और आधुनिक जीवन के विभिन्न विकल्प और अमानवियताओं का सरल उल्लेख और उनकी समीक्षा मिलती है।

पिंनी का साबुन

संजय खाती

की हिन्दी कहानी पर आधारित

सीरीज़ संपादिकाः गीता धर्मराजन

KATHA

प्रथम हिन्दी संस्करण 2008, दूसरा संस्करण 2010
तीसरा संस्करण 2010, चौथा संस्करण 2010
कृति स्वामित्व © गीता धर्मराजन
स्वत्वाधिकार सुरक्षित। प्रकाशक की आज्ञा के बिना इस किताब के किसी भी भाग को छापना अथवा अन्य किसी पुनः प्रयोग विधि के रूप में प्रतिकृति या इस्तेमाल वर्जित है।
नई दिल्ली द्वारा मुद्रित
ISBN 978-81-89934-15-6
कवर चित्राँकन एवं डिज़ाइनः गरिमा गुप्ता
चित्राँकनः एम डी हुसैन एवं दिलिप कुमार मंडल

कथा एक पंजीकृत अलाभकारी संस्था है। कथा का मुख्य उद्देश्य है बच्चों और बड़ों में पढ़ने में रुचि एवं इससे मिलनेवाली खुशी को बढ़ावा देना।

ए 3 सर्वोदय एनक्लेव, श्री औरोबिन्दो मार्ग
नई दिल्ली–110017
दूरभाषः 4182 9998, 2652 4511
फैक्सः 2651 4373
ई मेलः kathakaar@katha.org, इंटरनेटः http://www.katha.org

1

ऐसा हमारे गाँव में पहली बार हुआ था। यकीनन हम में से कुछ ने साबुन के बारे में सुना था, लेकिन कुछ मुट्ठी भर लोग रहे होंगे जिन्होंने साबुन को वाक़ई देखा था। दरअसल, साबुन क्या चीज़ होती है, यह हमें फौजियों की वजह से ही पता चला था। और इसलिए भी क्योंकि कुछ औरतों ने उसे डिप्टी साहिब की बेटी पिंटी के पास देखा था।

कहते हैं कि उसके साबुन से फूलों की खुशबू मीलों तक फैली रहती थी। पंद्रह साल बाद भी पिंटी अपने साबुन के लिए याद की जाती थी और साबुन की बात उसी तरह, उसी जोश से होती थी जैसे इत्र, फुलेल और बाकी सुगंधियों की।

पिंटी, यकीनन, एक दूसरी ही दुनिया से थी। लेकिन हमारे गाँव में किसी के पास भी साबुन नहीं था। असल में मैं वह पहला लड़का था जिसे साबुन पाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह सब अचानक हुआ, क्योंकि ऐसा होने की कोई उम्मीद नहीं थी।

आज भी मुझे याद है, शायद वह पंद्रह अगस्त का दिन था। ज़रूर कोई खास दिन रहा होगा क्योंकि उस दिन स्कूल बंद था। काका और मैं मीलों चलकर कस्बे में आलू बेचने गए थे। काका मुझसे सिर्फ़ पाँच या सात साल बड़े होंगे और हम दोस्त ही थे। कभी-कभी वे अपना बड़प्पन जताने की कोशिश करते, पर मैंने कभी उनका रौब नहीं माना।

कस्बे की चहल-पहल और रौनक में हम लोग इधर-उधर घूम रहे थे। लेमनचूस चूसते हुए हम अचानक एक भीड़ और शोरगुल-भरे मैदान में आ पहुँचे। वहाँ कोई मेला लगा था। हमारे चारों ओर सीटियाँ बज रही थीं और एक आदमी लाउडस्पीकर पर चिल्ला रहा था।

हम भटककर भीड़ के बीचों-बीच पहुँच गए। अचानक मुझे लगा कि मुझे घसीटा जा रहा है। किसी ने मुझे बाजू से पकड़ा और मुझे एक कतार में ले जाकर खड़ा कर दिया। एक आदमी मेरी ही उम्र के कई लड़कों को एक सफ़ेद लकीर पर खड़ा कर रहा था। मेरे दोनों तरफ़ लड़के चीख-चिल्ला रहे थे, एक पैर पर आगे झुके हुए, दौड़ने को तैयार, जैसे कोई रेस होने को हो।

सौभाग्यः अच्छी किस्मत
रौबः धौंस
लेमनचूसः नींबू के स्वाद वाली टॉफी

रेसः दौड़ प्रतियोगिता

पहले तो मैं घबरा गया। काका भी दिखाई नहीं दे रहे थे। शायद लाठीधारी पुलिस ने उन्हें धक्के देकर पीछे कर दिया था। लाउडस्पीकर पर गिनती शुरू हो गई थी।

"एक, दो ... और तीन!"

मेरे चारों ओर लड़के भूखे भेड़ियों की तरह खुल गए, और मैं भी उनके साथ भागा। शुरू में तो मुझे पता ही नहीं चला कि हो क्या रहा था। पर जब मैंने देखा कि मेरे साथवाला लड़का पतली-पतली टाँगों पर दौड़ता हुआ मुझसे आगे निकल गया, तो मैं भी अपनी पूरी ताकत से दौड़ा। इससे पहले कि मुझे कुछ होश आए, मैंने पाया कि मैं ज़मीन पर पड़ा हूँ, मैदान के दूसरे सिरे पर, दौड़ ख़त्म होने के लाल फीते में उलझा हुआ।

और मेरे घुटने छिल गए थे। जैसे ही मैं उठकर खड़ा हुआ, तालियों की गड़गड़ाहट के बीच मुझे एक चमकदार लाल डिब्बा पकड़ा दिया गया।

भीड़ में कहीं से काका निकल कर आए, और वे हँस रहे थे। हम दोनों हँसने लगे। मैं फिर से दौड़ना चाहता था, इसलिए मैं दौड़ने लगा। हाँफ़ते हुए, काका भी पीछे-पीछे भाग रहे थे। मैं सीधे गाँव की ओर दौड़ रहा था। पीछे से काका के बुलाने की आवाज़ भी आ रही थी। जब आख़िर मैंने दौड़ना बंद किया, तो वे हाँफ़ते-हाँफ़ते मेरे पास आ खड़े हुए।

"क्या है रे?" वे जानने को उतावले हो रहे थे।

ओह, मैंने अब भी वह चमकीला लाल डिब्बा पकड़ रखा था।

काका ने डिब्बा मेरे हाथ से छीन लिया और उसे उलट पलट कर देखने लगे। उन्हें ही सबसे पहले पता लगा कि उस डिब्बे में साबुन था। उन्होंने कई बार उसे सूँघा। उनका चेहरा जोश और खुशी से चमक उठा, और वे उसे वापस देने का नाम ही नहीं ले रहे थे! जब मैंने लेने के लिए हाथ बढ़ाया, तो वे चिढ़कर बोले, "खा तो नहीं जाऊँगा इसे!" लेकिन मुझे उनके इरादे कुछ ठीक नहीं लग रहे थे।

अब कुछ करना ज़रूरी था। आख़िर साबुन था तो मेरा ही! मैंने लपक कर उसे छीनने की कोशिश की ताकि वह उनके हाथ से गिर जाए और मैं पकड़ लूँ। लेकिन किसी भी तरह मैं उस लम्बे-चौड़े पहलवान से जीत नहीं सका। जल्द ही उसने साबुन पर लिपटा काग़ज़ उतार लिया और अंदर से गुलाबी रंग की वह बेशक़ीमती टिकिया भी निकाल ली। हारकर, मैंने अपना आख़िरी हथियार प्रयोग किया – नदी किनारे रेत में लोट गया और ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा।

"मैं इजा को बताऊंगा ...!" और हमेशा की तरह, इस बार भी यह हथियार काम आया। काका मुझे थोड़ी देर घूरते रहे। "जा मर!" उन्होंने मुझपर साबुन दे मारा और मैंने उसे झट दबोच लिया।

"और काग़ज़ और पन्नी?" उन्होंने वे भी मेरे ऊपर फेंक दिए। घर लौटते समय मैं पूरे रास्ते उसे सूंघता रहा, अपने आप से बेहद खुश।

बेशक़ीमतीः बहुत महँगा
इजाः माँ (कुमाऊँनी भाषा में)

काका और मेरे बीच की दुश्मनी की वही असली शुरूआत थी। मगर उस वक़्त मुझे इस बात का एहसास नहीं हुआ। मैं साबुन की मदमाती महक में इतना खोया हुआ था कि मैंने काका की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। यह खुंदक समय के साथ बढ़ती चली गई और पक्की दुश्मनी बन गई।

बहरहाल, उस शाम, काका मेरे साथ पत्थरों को ठोकरें मारते हुए चलते रहे। घर पहुँचते ही उन्होंने व्यंग्य-भरी हंसी के साथ ऐलान कर दिया, "हरिया सोचता है कि अब हम उसके लायक नहीं रहे। सिर्फ़ इसलिए कि अब उसके पास साबुन है।"

इजा गाय का गोबर समेट रही थीं। वह खड़ी हो गईं। "साबुन! कहाँ से मिला? कैसा है? दिखा मुझे।"

"यह मेरा है," मैंने गोली की रफ़्तार से जवाब दिया। इजा ने ठीक से हाथ पोंछे और मेरे पास आईं। "मुझे भी दिखा। किस तरह का साबुन है?"

तब तक मुझे हर किसी पर शक होने लगा था। काफ़ी ना-ना कहने के बाद मैंने साबुन पर अपनी पकड़ ढीली की। इजा उसे दीये के पास ले गईं और ध्यान से देखती रहीं। उसे दो-तीन बार सूंघा भी, और फिर कहा, "इससे मैं नहाऊँगी।"

मैं साबुन पर चील की तरह झपटा। उसे जेब में ठूंस, मैं इजा की पहुंच से दूर खड़ा हो गया। वह एकदम सकपका गईं। फिर मुझे बुरी तरह घूरती हुई बोलीं, "आग लगे तेरे साबुन को!" और वहाँ से चली गईं।

और इस तरह मेरी इजा मेरी दूसरी दुश्मन बन गई।

मदमातीः मस्त कर देनेवाली
व्यंग्यः ताना, उपहास

2

मुझे उस साबुन की ताकत को समझने में काफ़ी वक़्त लगा। शायद मैं तब तक बड़ा नहीं हुआ था। फिर भी मुझे जल्द ही ऐसा लगने लगा कि मैं दुश्मनों से घिरा हुआ हूँ।

मुझे मालूम था कि काका मेरी चीज़ों की तलाशी ले रहे थे। उन्होंने घर के सभी बक्सों और डिब्बों में साबुन ढूँढने की कोशिश की थी, यहाँ तक कि गाय के तबेले में फूस के ढेर के नीचे भी। लेकिन सिर्फ़ मुझे पता था कि साबुन कहाँ छिपा था।

अंत में, उन्होंने ढूँढना बंद कर, मुझसे दोस्ती करने की कोशिश की। लेकिन अब मुझे उनकी सारी चालाकियाँ और खेल समझ में आने लगे थे।

जहाँ तक बापू का सवाल था, उनकी तो यह भी क़िस्मत न थी कि उन्हें साबुन की एक झलक भी मिल पाती। साबुन की लगातार चर्चा से इतना चिढ़ चुके थे कि बात होते ही वे फ़ौरन् छड़ी उठा लेते थे।

तब तक मुझे विश्वास हो गया था कि जब भी कोई एक बार साबुन देख ले, तो फिर उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। तो मैंने फ़ैसला कर लिया कि अब मैं साबुन किसी को भी नहीं दिखाऊँगा। और मैं इस फ़ैसले पर अड़ा रहा। अंत में बापू ने मेरी पीठ पर दो लातें मारीं और कहा, "तो इत्र और फुलेल अब इसके नए शौक हैं! इसे गाय-भैंस चराने भेज दो। इसका यही इलाज है।"

मैंने खून का घूंट पी लिया, पर रोया नहीं। लेकिन मुझे यह शक ज़रूर हुआ कि मैं उनका बेटा हूँ भी या नहीं।

मेरी बहन कुंती को साबुन देखने को मिला, छूने को भी और सूंघने को भी – लेकिन मेरी निगरानी में। एक बार उसे छूने के बाद वह हर वक़्त मेरी पूँछ बनी मेरे पीछे-पीछे घूमती रहती। उससे पीछा छुड़ाने का एक ही तरीका था, कि उसे एक चांटा कसकर रसीद दिया जाए।

इस दुश्मनी और शक के वातावरण में साबुन को देखना तक दूभर हो गया था। दिन घिसट-घिसट कर बीत रहे थे। अंत में एक रविवार मैंने फ़ैसला कर ही लिया। मैंने साबुन निकाला और गर्म पानी से नहाने बैठ गया।

खून का घूंट पीनाः गुस्सा दबाना, अपमान सहना
दूभरः मुश्किल

3

साबुन को इस्तेमाल करने का यह पहला दिन था। बड़े ध्यान से मैंने काग़ज़ उतारा और उसे संभालकर धूप में रख दिया। अपने दाएँ हाथ में मैंने साबुन को प्यार से पकड़ा और उसे धीरे से अपने गीले बालों पर फिराया।

गुलाबी रंग के साबुन पर अंग्रेज़ी अक्षर खुदे थे। मैं उन्हें पढ़ नहीं सकता था, पर वे जो भी थे, उनसे साबुन और भी ख़ूबसूरत लग रहा था। मुझे ख़्याल रखना था कि कहीं वे अक्षर घिस न जाएँ।

काका के लिए यह पढ़ने का समय था, और उनके पढ़ने की आवाज़ भी आ रही थी। लेकिन बीच-बीच में उनका सिर किसी न किसी खिड़की पर दिखाई दे जाता। इजा खेत की ओर जा रही थीं, पर मुझे देखकर आँगन में ही रुक गईं।

वह कई पल जड़वत खड़ी रहीं, पर फिर नाराज़ होकर चली गईं। लेकिन कुंती वहीं खड़ी रही, मुझसे कुछ कदम दूर। साबुन का मेरे बालों पर फिसलना, उसका सफ़ेद घना झाग और उसके इंद्रधनुषी बुलबुलों का धूप में झिलमिलाना, यह सब उसे आकर्षित कर रहे थे। मैं चिल्लाया, "जा! भाग यहाँ से!" कुंती गिड़गिड़ाने लगी, "दादा, मुझे भी इससे नहाने दो न?"

मैं कुंती को अच्छी तरह जानता था। वह बिल्ली-सी चालाक थी। उसे भगा देना ही बेहतर था। मैंने उस पर पानी फेंका। जब वह फिर भी नहीं गई तो मैंने उसे गीले हाथ से खींचकर थप्पड़ मारा।

कुंती की चीखें सुनकर काका सीढ़ियों से भाग कर नीचे आए। "तेरी हिम्मत कैसे हुई इसे मारने की? अब तो तेरी ख़ैर नहीं!" वे चिल्लाने लगे। लेकिन वे दहलीज़ से बाहर नहीं आए। वे वहीं खड़े मुझे घूरते रहे। मैं मुस्कुराता, खिलखिलाता झाग बनाता गया, अपनी ही दुनिया में खोया। और उधर काका अपनी धमकियों की झड़ी लगाए हुए थे।

काफ़ी देर बाद, भले ही मन तो नहीं कर रहा था, पर मैंने साबुन को शरीर से धो डाला। मैंने साबुन की टिकिया को सुखाया और ध्यान से उसे वापस काग़ज़ में लपेट दिया। वह अभी भी नया ही लग रहा था। जब मैं काका के पास से गुज़रा, तो साबुन की खुशबू से उनकी नाक गुदगुदा गई।

क्या खुशबू थी! मैं एकदम ताज़ा महसूस कर रहा था। और मेरे बाल एकदम चिकने और मुलायम हो गए थे। मैंने फटाफट कपड़े पहन लिए, मुझे डर था कि कहीं खुशबू उड़ न जाए।

जड़वतः स्थिर, अचल
झड़ीः एक के बाद एक

4

कई बार मैं छत की बुर्जी से छलांग लगा बहुत दूर उड़ानें भरता। ऊँचे-ऊँचे पर्वतों और घने जंगलों के ऊपर, जैसे कोई चील। अनगिनत नदियों और गाँवों के पार। शरीर में मानों बिजली-सी कौंध जाती।

मैं हवा में तैरता ऊँचाई से नीचे अपने घर की ओर देखता — एक छोटा, खिलौने जैसा घर, और इजा, बापू, काका, कुंती। वे सब चींटियों के समान दिखते। सिर्फ़ मैं ही था जो पूरी दुनिया के ऊपर उड़ान भर रहा था, और उन सब से ऊपर। मुझ तक कोई नहीं पहुँच सकता था!

ये सब सपने थे। लोग कहते हैं कि बढ़ते हुए बच्चे अक्सर उड़ने के सपने देखते हैं। लेकिन सपने सच भी हो सकते हैं। जिस दिन मैं पहली बार साबुन से नहाया, मुझे लगा कि अब मैं वास्तव में उड़ सकूंगा।

उस दिन स्कूल था। साबुन से रगड़-रगड़कर नहाने के बाद मैं चमक रहा था। खुशबू से महकते शरीर पर मैंने अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहने और बालों को नए स्टाइल से बनाया। स्कूल जाते हुए पूरे रास्ते मैं अपने बाजू सूंघता रहा कि कहीं खुशबू उड़ तो नहीं गई। लेकिन खुशबू तो कई घंटों तक रही। और अगर गर्मी, पसीना, धूल-मिट्टी और हवा न होती, तो वह कभी भी नहीं उड़ती।

जैसे ही मैं कक्षा में पहुँचा, कोहराम मच गया। कुछ ही पलों में सब खुशबू सूंघ-सूंघकर बेचैन होने लगे कि खुशबू आ कहाँ से रही है। मैं कुछ देर तमाशे का मज़ा लेता रहा, और मेरे चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान खेलती रही। फिर मैं अपने पास बैठे लड़के की ओर मुड़ा और अपनी हथेली उसकी नाक के नीचे कर दी।

"ओ बाबा! यह तूने क्या लगाया है?" वह तो आश्चर्य से उछल ही पड़ा। इसके बाद जो हुआ, उसे भगदड़ कहते हैं। तौबा! सभी बच्चे खुशबू लेने के लिए एक के ऊपर एक चढ़े आ रहे थे। कुछ तो एक दूसरे के ऊपर चढ़ छलांग तक लगा रहे थे कि कहीं से उनकी नाक को खुशबू का झोंका ही मिल जाए। और जो खुशक़िस्मत मेरी खुशबू सूंघ चुके थे, वे और अधिक जानने को बेताब हो रहे थे। "यह है क्या? हमें बताओ न," वे मेरे आगे गिड़गिड़ा रहे थे।

बुर्जी: सबसे ऊँचा हिस्सा
कनखियों से: आँखों के कोने से

जब मैं पूरी कहानी सुना चुका था, तो कक्षा जोश और खुशी से सनसना रही थी। सचमुच? यह साबुन होता कैसा है? उसको लपेटने का अलग से क़ागज़ भी है! एक दिन वह घिसकर खत्म भी हो जाएगा। लेकिन फिर वह जाकर एक और दौड़ जीतकर आएगा। दिखा दे न यार, दिखा दे न, सिर्फ़ एक बार ...

यह सनसनी तभी ख़त्म हुई जब मास्टर साहब, जिन्हें हम जलदी में "मास्साब" कहते थे, कक्षा में आ गए। लेकिन पाठ में किसी का मन नहीं लग रहा था। लड़के मुझे कनखियों से देख रहे थे। और मैं हवा में उड़ रहा था। मैं चाहता तो उस दिन खुद को क्लास मॉनिटर घोषित कर सकता था, और वे सभी एक पल में मान जाते। उन सब ने अपने पिता और दादाजी से पिंटी और उसके साबुन की कहानियाँ सुन रखी थीं। जिसे वे

हमेशा सपना ही मानते थे, आज उसी सपने में शामिल हो, वे खुशी से पागल हो रहे थे।

आधी छुट्टी की घंटी बजी। हमेशा की तरह लड़के बाहर की ओर भागे। पर अचानक वे रास्ते में रुक गए। मैं अभी भी अपनी जगह बैठा था। "आ रे, चल, चलें, " उन्होंने मुझे बुलाया। सब मेरे नज़दीक रहना चाहते थे, वे भी जिन्होंने मेरे छोटे और पतले होने का फ़ायदा उठाकर मुझे हमेशा सताया था। इससे पहले किसी ने कभी मेरे लिए इंतज़ार नहीं किया था।

"तुम हमारी तरफ़ हो," कुछ लड़कों ने कहा। "नहीं, हमारी तरफ़!" मैं किस तरफ़ था, इस बात पर एक बड़ी लड़ाई छिड़ गई। पर मुझे दिखाई दे रही थी सिर्फ़ कबड्डी की गुत्थमगुत्था, और सिर से पैर तक मिट्टी में सने हुए लड़के।

"मेरा खेलने का मन नहीं," मैंने कह दिया।

"क्यों? ऐसा क्यों?" उन सबने एक साथ पूछा। फिर वे समझ गए। "ठीक है, तू रेफ़री बन जा। बैठकर देख।" मुँह लटकाए वे एक-एक करके बाहर चले गए।

गाँव में यह ख़बर जंगल की आग की तरह फैल गई। हर कोई साबुन देखने को उत्सुक था। मुझे हर तरह के लोग रास्ते में रोक लेते। या फिर किसी न किसी बहाने मुझसे मिलने आते। फिर वे साबुन देखने की माँग करते। जब मैं इंकार करता, तो वे नाराज़ हो जाते। कुछ तो मुझ पर चिल्लाने लगते। कुछ भी हो, पर वे मुझे सूंघकर ही जाते।

साबुन न दिखाने की मेरी ढिठाई मेरे घरवालों के लिए शर्मिंदगी का कारण बन गई। नतीजा ये हुआ कि वे हर वक़्त मुझे बुरा-भला कहते रहते। काका जब भी मुझे देखते, तरह-तरह के धमकानेवाले इशारे करते।

एक बार तो उन्होंने मेरा गला घोंटने की भी कोशिश की। कुंती मुँह फुलाए घूमती थी। और कभी मेरी उससे लड़ाई हो जाती, तो बापू बेझिझक अपने ढाई किलो के हाथ से मेरी धड़ाधड़ पिटाई कर देते। और इजा हमेशा ही मुझसे चिढ़ी रहतीं।

वे सभी गिद्ध बने मेरी ज़रा-सी इस खुशी को छीनने की ताक में रहते। मैंने देखा कि पहले तो लोग मुझसे इज्ज़त से पेश आते। लेकिन जब मैं उन्हें साबुन दिखाने से इंकार कर देता, तो वे एक ही पल में मेरे ख़िलाफ हो जाते। उनमें से लगभग सभी मेरे दुश्मन बन गए।

लोगों ने मुझे "पिंटी" बुलाना शुरू कर दिया। यह सिर्फ़ मज़ाक नहीं था। यह उनका तरीका था मेरे लिए वैर जताने का। "पिंटी, पिंटी" कहकर बच्चे मेरा मज़ाक उड़ाते। मुझे इस नाम से बुलाए जाने पर बुरा तो लगता था, पर फिर भी मैं उस पिंटी के बारे में अक्सर सोचा

करता। मैं अंदाज़ा लगाने की कोशिश करता कि वह अब कहाँ और कैसी होगी। मैंने मन में उसकी तस्वीर बना ली थी, और मैं घंटों खाली बैठा उसमें रंग भरा करता। मेरी कल्पना में वह हमारे कैलेंडर पर बनी देवी लक्ष्मी जैसी थी। सुन्दर, चमकीले कपड़ों में लिपटी, जो रात के अंधेरे को अपनी रोशनी से भर देती। धूल का एक कण भी उस पर नहीं था।

मैंने खेलने जाना छोड़ दिया। कुछ बच्चे मेरे साथ रहे, पर जल्द ही वे बाकी बच्चों के साथ जा मिले। जब बच्चे अपनी शैतानियों में लगे रहते, मैं दीवार पर बैठा अपनी टाँगें हिलाता उन्हें देखा करता। वे एक-दूसरे के साथ कबड्डी में गुत्थमगुत्था होते, दलदल में ककड़ी ढूँढते, नींबू चुराते, नदी में नंगे तैरते, कीचड़ में गिरते, कपड़ों को फड़वाकर सत्यानाश करते और धूल में लिपटे हुए, कई चोटें लिए घर वापिस लौटते। और मैं वहाँ बैठा रहता, उँगलियाँ चटकाता, उन्हें देखता।

सच तो यह है कि कई बार मेरा मन किया कि मैं भी उनके बीच कूद जाऊँ। पर हर बार कोई न कोई बात मुझे रोक लेती। मेरा मन करता कि कोई मुझे ज़बरदस्ती कबड्डी के पाले में खींचकर ले जाए। पर ऐसा नहीं हुआ। उन्होंने मुझसे पूछना तक बंद कर दिया। उन्होंने मान लिया था कि पिंटी को सिर्फ़ बैठना और बैठकर देखना ही भाता है। उनके लिए जैसे अब मेरा कोई अस्तित्व ही नहीं था।

अक्सरः कई बार
अस्तित्वः होना

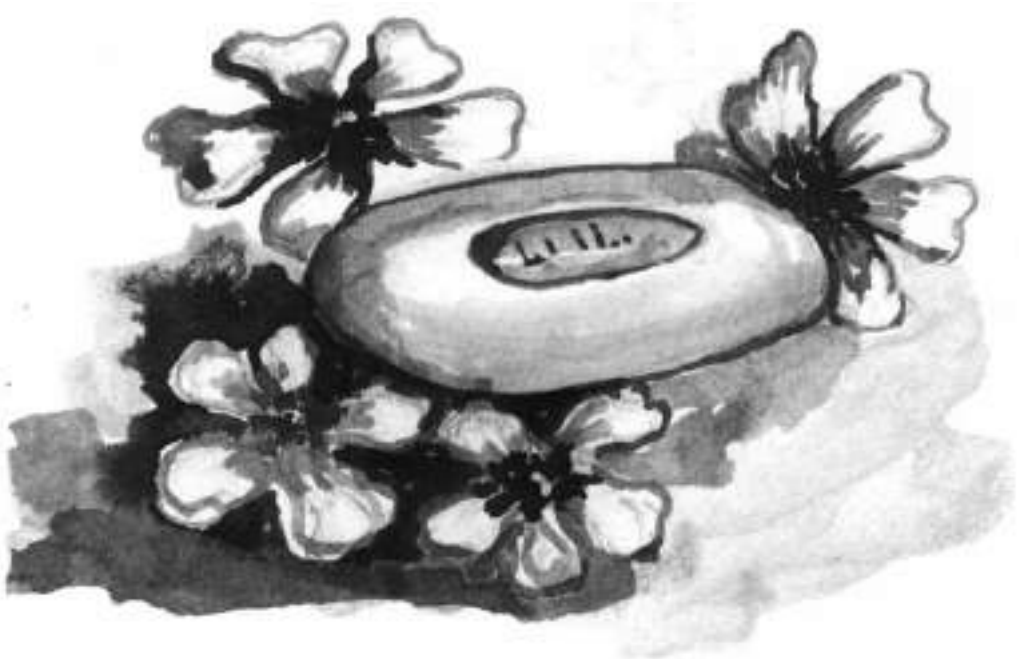

5

कुछ दिन बाद, काका कस्बे में जाने की तैयारी कर रहे थे। वे वहाँ से सामान लाने के लिए थैले इकट्ठा कर रहे थे। मैं अपने आप को रोक न सका और कहा, “मैं भी आपके साथ जाऊँगा।”

“नहीं। तुम मेरे साथ नहीं जाओगे।” काका की आवाज़ में कड़वाहट थी।

“जाऊँगा!”

“भाभी!” काका चिल्लाए, “जो चाहिए इसे बतला देना। मैं नहीं जा रहा।”

इजा मुझपर शेरनी की तरह लपकीं। मुझे कान से पकड़कर ज़मीन पर दे पटका। “आ तुझे बताती हूँ मैं! जैसे-जैसे बड़ा होता जा रहा है, पंख निकल रहे हैं तेरे...!” मेरी पीठ पर लातें बरसातीं वह चिल्ला रही थीं।

काका खुशी से फूल रहे थे। "देखना ज़रा ढंग से पिटाई हो इसकी, " वे नसीहत देना न भूले।

इजा मुझे घर से यूँ घसीट कर बाहर ले गईं जैसे मैं कोई मरा हुआ चूहा था, और मुझे बिच्छू बूटी की झाड़ियों में धकेल दिया।

"नहीं, इजा, ना ...!"

और तब हमारे बीच प्यार की वह आख़िरी डोर भी टूट गई।

अगले दिन, आधी छुट्टी पर मैं दीवार पर बैठा था। बिच्छू बूटी के काँटे अब भी चुभ रहे थे और मैं डबडबाई आँखों से बाकी बच्चों को खेलते देख रहा था, उनके धुँधलाए आकार। मेरी कुहनियाँ छिली हुई थीं, मेरे बालों में कीचड़ जमा था। मैं उस दिन नहाया था, पर मुझमें कोई खुशबू बाकी नहीं थी।

मेरा मन ज़ोर-ज़ोर से रोने को कर रहा था। मैं वहाँ से उठकर चला जाना चाहता था। हमेशा के लिए। जहाँ पिंटी रहती थी। जहाँ के लोग अलग थे। जहाँ कोई नफ़रत नहीं थी, न बिना बात की पिटाई और न ही किसी को दबाने का प्रयत्न।

मैंने फ़ैसला किया कि पहला मौका पाते ही मैं कस्बे की ओर भाग जाऊँगा। और वहाँ से कहीं दूर की बस पकड़ लूँगा। और फिर कभी नहीं लौटूँगा। कभी नहीं!

नसीहतः सीख
डबडबाईः आँसू-भरी

वक़्त बीतने के साथ मेरा यह फ़ैसला और मज़बूत होता गया। मैंने साथ ले जानेवाले कपड़े छांटे, और वह थैला भी जिसमें मैं अपना सामान ले जाने वाला था। मैंने कुछ अखरोट छिपा कर रख दिए और यह भी पता लगा लिया कि पैसे कहाँ से लेने हैं। सिर्फ़ एक मौका चाहिए था।

और एक दिन वह मौका भी मिल गया। मैं नहा रहा था। मैं हर रोज़ नहाता था, चाहे कितना ही जाड़ा हो। मुझे नहीं पता था कि काका घात लगाए बैठे थे।

जैसे ही मैंने साबुन नीचे रखा, वे मुझ पर बिल्ली की तरह झपटे। मैं फंस गया था। काका का हाथ साबुन लेने के लिए लपका। वे उसे उठा लेते पर साबुन फिसल कर गिर गया। और मैंने भारी पीतल का लोटा उन पर पूरे ज़ोर से दे मारा।

काका के मुँह से एक दबी हुई चीख़ निकली और अपना सिर पकड़े वे धीरे-धीरे ज़मीन पर गिर गए। तब तक मैंने साबुन वापिस अपने कब्ज़े में कर लिया था और लोटा लेकर तैयार खड़ा हो गया। लेकिन काका नहीं हिले। मेरी टाँगें काँपने लगीं। "काका ... काका?" मैं उन्हें हिलाने की कोशिश कर रहा था और चिल्ला रहा था।

घात लगानाः मौके की तलाश में रहना

काका ने दर्द से कराहते हुए सिर ऊपर उठाया। उनके माथे से खून बह रहा था। “साले, तूने मुझे मारा ...” वे बड़बड़ाए। अपना माथा पकड़े वे लड़खड़ाते हुए बाहर चले गए। वे थोड़ी दूर जाकर रुके और फिर मेरी तरफ़ मुड़े। वे रो रहे थे, उनका चेहरा सफ़ेद था और गालों पर खून और आँसुओं की धाराएँ बह रही थीं। सुबकते हुए उनके मुँह से निकला, “साले, एक दिन तो तेरा साबुन ख़त्म हो ही जाएगा!”

मैं भौंचक्का रह गया। धीरे-धीरे मैंने अपनी उंगलियाँ खोलीं। वो ख़ूबसूरत गुलाबी साबुन मेरी हथेली पर चिपका था। अब वह बहुत पतला रह गया था। और अब उसमें पहले-सी खुशबू नहीं थी।

मेरा दिल बैठ गया।

रोने का समय नहीं था। मैंने कपड़े पहने और ऊपर भागा। थैला निकाला और उसमें कुछ कपड़े ठूंसे। अखरोट

लेने का समय भी नहीं था। बस्ता? कोई ज़रूरत नहीं। और पैसे?

इतनी ही देर में मैंने काका को इजा से कहते सुना कि वे गोबर पर फिसल गए थे और उनका सिर तबेले के दरवाज़े से जा टकराया था।

यह सुनकर मैं जैसे खोखला-सा हो गया। मैं अपनी चारपाई पर गिर पड़ा। थोड़ी देर बाद, मुझमें कुछ हिम्मत आई तो मैं गया और साबुन को उसकी पुरानी जगह पर छिपा दिया। फिर वापिस आया और एक अंधेरे कोने में सिमट कर सो गया। मैं पूरी शाम सोता रहा – सबसे कह दिया था कि मेरे पेट में दर्द है।

जब मैं अगली सुबह उठा, चारों ओर एक अजीब-सी सफ़ेद रोशनी फैली हुई थी। पूरी रात बर्फ़ गिरी थी। मैं बुरी तरह घबरा गया।

मैं नंगे पैर दौड़ा तबेले की तरफ़। फूस के ढेर पर क़रीब चार-उंगल बर्फ़ की परत थी। साबुन छिपाने की जगह उस फूस के ढेर के नीचे कहीं थी। मैंने बर्फ़ में खोदना शुरू किया। साबुन वहाँ नहीं था। यहाँ? या वहाँ? मेरा हाथ कीचड़ से लथपथ और ठंडा हो गया था।

फिर मेरी उंगलियों ने एक चिकनी चीज़ को छुआ। एक ढेला, गुलाबी रंग की कीचड़ का। खुशबूदार। बुरी तरह काँपते हुए लेकिन मुट्ठी में वह ढेला भींचे हुए मैं बर्फ पर गिर गया।

"हरिया!"

इजा वहाँ खड़ी थीं। वे गायों को दुहने आई थीं। मैंने सिर उठाकर देखा। ढेला मेरे हाथ से फिसल कर नीचे गिर गया। "हरिया ..." उनकी आवाज़ बेहद नर्म थी, पर बेहद उदास।

मैं काँपने लगा। मैंने उन्हें कीचड़ से सने हाथों से कसकर पकड़ लिया और फूट-फूट कर रोने लगा। और रोता रहा। इजा मेरे पास बैठ गईं और मुझे अपनी बाँहों में ले लिया। पहले की तरह। मैं उनकी गोद की गर्माहट में रोता रहा।

फिर लगा कि जैसे बर्फ़ का कोई पहाड़ पिघल रहा हो। और मेरा दिल बिल्कुल हल्का लगने लगा, जैसे कपास हो। अगर उस वक़्त कोई हवा का झोंका आता, तो शायद मैं उस पर तैर उड़ ही गया होता!

सोचो-सोचो

आती है किन-किन चीज़ों से खुशबू?
आती है कहाँ-कहाँ से खुशबू?

लेकर आती है क्या खुशबू?
मन को भाती है क्यों खुशबू?

आती है कैसी-कैसी खुशबू?
वाक्य लिखो या कुछ शब्द बतलाओ।

कथा कहती है कहानी?

साबुन क्या आया, मेरी तो दुनिया ही बदल गई! मैंने सबसे दुश्मनी मोल ली। साबुन से नहाकर मेरा तन तो हो गया साफ, पर मन रहा मैला का मैला।

कथा नियमित रूप से पेड़ लगाती है उस लकड़ी के बदले जिससे हमारी किताबों को छापने का कागज़ बनता है।

इस किताब की बिक्री से मिली राशि का 10% अल्पाधिकारी बच्चों के एक स्कूल, कथाशाला को दिया जाएगा।

युवकथा की अन्य दिलचस्प किताबें!

साबुन क्या आया, मेरी तो दुनिया ही बदल गई! मैंने सबसे दुश्मनी मोल ली। साबुन से नहाकर मेरा तन तो हो गया साफ, पर मन रहा मैला का मैला।

छोटे-बड़े बच्चों के लिए

एक कथा की किताब

ISBN 978-81-89934-15-6

www.katha.org

रु. 65/-